5

अध्याय

ग्राफ़िक डिज़ाइन की स्वदेशी परंपराएँ

क्या ग्राफिक डिज़ाइन एक आधुनिक विचारधारा यानी नए ज़माने की देन है अथवा हम पुराने ज़माने में भी ऐसी कला-पद्धतियों को अपनाए हुए थे जिन्हें ग्राफिक डिज़ाइन यानी आलेखीय रूपांकन की पद्धतियाँ कहा जा सकता है? क्या केवल शहरी पढ़े-लिखे लोग ही ग्राफिक डिज़ाइन करते हैं अथवा हमें जनजातीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों और समुदायों में भी जो आमतौर पर आधुनिक तरीके से शिक्षित नहीं होते, ऐसी कला परंपराएँ मिल सकती हैं?

आप क्या सोचते हैं? जी हाँ, हमें पूर्व-आधुनिक और पारंपरिक लोगों और समुदायों में भी ऐसी अनेक कलात्मक गतिविधियाँ देखने को मिल सकती हैं जो ग्राफिक डिज़ाइन की श्रेणी में आती हैं। ये कलाकृतियाँ अनेक प्रकार की होती हैं और घरों की देहली से लेकर कोनों, दीवारों, छतों, सामने के आँगनों आदि में सर्वत्र भाँति-भाँति के चित्रांकनों के रूप में देखी जा सकती हैं। इनकी सूची बनाई जाएत ेव हब हुतल ंबीह ेगी।ि जसमेंह ाथकरघेक ाक पड़ा,ि मट्टीस ेक ेग ई सजावट, गोदना, हाथों और हथेलियों पर की जाने वाली डिज़ाइनें, जैसे कि मेंहदी रचाना, धार्मिक चित्र मांडना, जंतर-ताबीज़, यंत्र आदि और भारत के अनेक किलों एवं मंदिरों की छतों, दीवारों आदि पर अंकित डिज़ाइनें शामिल होंगी। ये सभी कलाकृतियाँ आधुनिक या समकालीन ग्राफिक डिज़ाइन की पद्धतियों से भिन्न होती हैं। इसलिए इन्हें स्वदेशी ग्राफिक डिज़ाइन की परंपराएँ अथवा ग्राफिक डिज़ाइन की पारंपरिक पद्धतियाँ कहा जा सकता है।

वर्तमान में प्रचलित भारतीय स्वदेशी ग्राफिक डिज़ाइनों और नमूनों (motif) को उनकी अपनी-अपनी परंपरा के आधार पर निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

- वैदिक और आरंभिक डिज़ाइन परंपराएँ
- लोक प्रचलित और लोकप्रिय परंपराएँ
- जनजातीय डिज़ाइन पद्धतियाँ
- तांत्रिक डिज़ाइन पद्धतियाँ

चित्र 5.1 एक यज्ञ अनुष्ठान

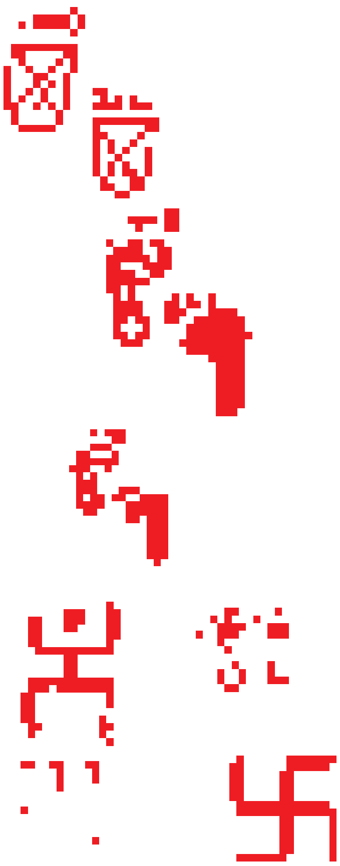

चित्र 5.2 वैदिक प्रतीक

वैदिक और आरंभिक डिज़ाइन परंपराएँ

उपर्युक्तप रंपराएँव ुछस ीमात कप रस्परज ुड़ीह ुईह ैं।अ ैरअ नेकए ेसस ेभव तरीके हैं जिनके द्वारा इन भिन्न-भिन्न शृंखलाओं को एक दूसरे के साथ जोड़ा जा सकता है। आरंभिक परंपराओं के बीच का संबंध तो सर्वज्ञात तथा निर्विवाद है, और इस विषय में कोई मतभेद नहीं है। आरंभिक डिज़ाइन पद्धतियों के बारे में व्यापक रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि वे वैदिक पद्धति का ही परवर्ती और लोकप्रिय रूप हैं। लेकिन क्या तांत्रिक पद्धति का वैदिक पद्धति से कोई संबंध है अथवा इसकी एक स्वतंत्र परंपरा है या ये पद्धतियाँ लोक/जनजातीय परंपराओं से निकली हैं – इस समस्या का अभी तक कोई समाधान नहीं हुआ है। लेकिन इस बात की पूरी संभावना है कि पौराणिक और तांत्रिक दोनों ही प्रकार की परंपराएँ एक ओर वैदिक परंपराओं से और दूसरी और लोक और जनजातीय परंपराओं से जोड़ी जा सकती हैं।

वैदिक धार्मिक कर्मकांड में यज्ञ ऐसे धार्मिक अनुष्ठान होते हैं जिनके द्वारा अग्नि में आहुति देकर विभिन्न सामग्रियों को विभिन्न देवी-देवताओं को अर्पित किया जाता है। यज्ञों, श्राद्ध कर्मों, विवाह-संस्कार जैसी धार्मिक क्रियाओं में मंडल/वृत्त, वर्ग और त्रिभुजों जैसी आकृति बनाकर भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं को निरूपित किया जाता है और उनके माध्यम से उनसे संबंधित देवी-देवताओं का आह्वान किया जाता है। उदाहरण के लिए, श्राद्धकर्म में, श्राद्धकर्ता द्वारा एक वृत्त यानी गोल घेरा बनाया जाता है और उसमें विराजमान होने के लिए पितृजन की आत्मा का आह्वान किया जाता है और इसी प्रकार 'विश्वेदेवा' कहे जाने वाले देवताओं को बुलाने के लिए उँगली से एक वर्ग तैयार किया जाता है।

यज्ञों में विभिन्न वैदिक देवी-देवताओं को बुलाने के लिए गोबर-मिट्टी से पुते फर्श पर या बनाई गई वेदी पर चावल के सफेद आटे से कई प्रकार की आकृतियाँ बनाई जाती हैं जो अपेक्षाकृत अधिक जटिल होती हैं।

वैदिक संस्कृति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण ध्वनि है ओऽम् जिसे 'प्रणव' कहा जाता है। इसे देवनागरी लिपि में ॐ के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जो हमारी संस्कृति में एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्राफिक प्रस्तुति है। ऐसे और भी कई

लोक-प्रचलित प्रतीक हैं, जैसे स्वास्तिक, जिनका मूल वैदिक ग्राफिक प्रतीकवाद में खोजा जा सकता है।

लोक प्रचलित और लोकप्रिय परंपराएँ

अनेक ग्रामीण परंपराएँ हैं जिन्हें न तो वैदिक और न ही आधुनिक कहा जा सकता है। इन परंपराओं को आमतौर पर 'लोक' परंपराओं के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है। इन परांपराओं के बारे में यह विवाद प्रचलित है कि क्या ये परंपराएँ वैदिक काल से पहले की हैं अथवा नहीं। इस विषय में सच्चाई कुछ भी हो, उनमें से अधिकांश परंपराएँ या तो वैदिक परंपरा से प्रभावित हैं अथवा आमतौर पर किसी न किसी रूप में उससे जुड़ी हैं। इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि लोक परंपराओं ने वैदिक परंपरा को प्रभावित किया था। ऐसे साक्ष्य भी मिलते हैं कि कुछ लोक परंपराओं को वैदिक परंपरा ने आत्मसात् कर लिया था और उनका अलग अस्तित्व नहीं रहा। लेकिन लोक परंपरा का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा भी देखने को मिलता है जिस पर वैदिक परंपरा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

चित्र 5.3 दीवार पर बनाया गया स्वास्तिक

लोक और पौराणिक परंपराओं में ऐसी लोकप्रिय सांस्कृतिक और कलात्मक पद्धतियाँ शामिल हैं जो धार्मिक या पंथनिरपेक्ष किस्म की हो सकती हैं। ये पद्धतियाँ अधिकतर रीति-रिवाजों, पेशेवर या कलात्मक परंपराओं के रूप में विकसित हुई हैं। ऐसी लोक और पौराणिक डिज़ाइन संबंधी परंपराओं में से कुछ के बारे में नीचे चर्चा की जा रही है।

देहली यानी प्रवेश द्वार की सजावट

भारत के गाँवों में ऐसी परंपरा है कि आगे के आँगन या देहली को गोबर या मिट्टी से लीपा-पोता जाता है और विशेष रूप से तैयार की गई दीवारों और आँगन पर तरह-तरह के चित्रांकन किए जाते हैं। देहली को घर के भीतर और बाहर की दुनिया के बीच की खाली जगह माना जाता है। मोटे तौर पर तो इस स्थान का

चित्र 5.4 सामने के आँगन की सजावट जिसमें तेल का दीपक रखने के लिए खाली जगह रखी गई

प्रयोजन केवल सजावट करने के लिए ही प्रतीत होता है, लेकिन कुछ अध्ययनों से पता चला है कि इस पद्धति का मूल उर्वरता के भाव और अलौकिक विश्वासों में खोजा जा सकता है।

आमतौर पर, ये चित्रांकन पाउडर यानी आटे या चूने से किए जाते हैं। भारत के अधिकतर भागों में इसके लिए सफेद पाउडर का इस्तेमाल किया जाता है। कुछ भागों में यह सफेद पाउडर कच्चे सफेद पत्थर को कूट-पीसकर तैयार किया जाता है। लेकिन आजकल अधिकतर जगहों में इस काम के लिए चावल के आटे का इस्तेमाल किया जा रहा है।

यद्यपि अलग-अलग क्षेत्रों में इन चित्रांकनों के नाम अलग-अलग होते हैं। उनमें प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री अलग-अलग किस्म की होती है और ये घर के किस भाग में बनाए जाएँ इसमें भी भिन्नता होती है, मगर एक बात में

चित्र 5.5 फर्श पर देहली की सजावट

चित्र 5.6 फर्श पर डिज़ाइन बनाते हुए

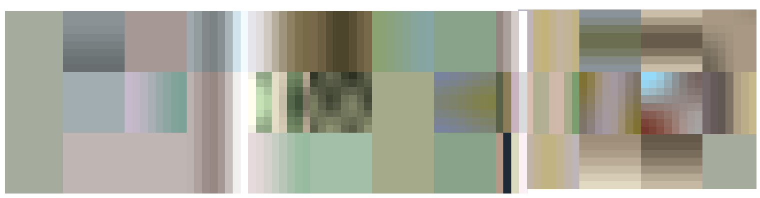

एकरूपता अवश्य होती है कि घर की देहली पर ये चित्रांकन सर्वत्र स्त्रियों द्वारा ही किए जाते हैं और उन्हें इसकी शिक्षा पीढ़ी-दर-पीढ़ी यानी माँ से बेटी को दी जाती है। सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है मानो इस लैंगिक अनन्यता ने स्त्रियों के लिए कार्यक्षेत्र को घर की देहली तक सीमित कर दिया है।

फर्श को सजाने की इस पद्धति को भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है; जैसे- 'अल्पना' या 'अल्पोना' बंगाल में; 'अरिपन' बिहार में; 'झुनिति' उड़ीसा में; 'मांडणा' राजस्थान और मध्यप्रदेश में; 'साथिया' गुजरात में; 'रंगोली' महाराष्ट्र में;, 'मुग्गु' आंध्रप्रदेश में और 'कलामेझ़ुतु', 'कोलम' कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल में; और उत्तर प्रदेश में इसे 'चौक पूरना' या 'अरिपन' कहते हैं।

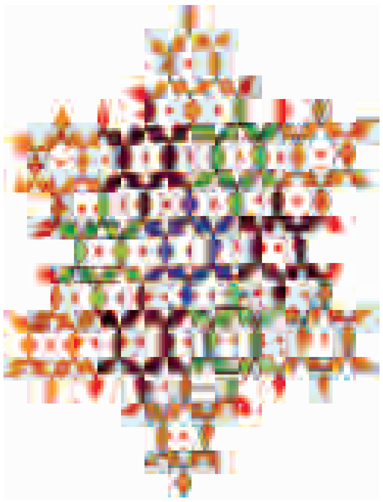

केरल में, डिज़ाइन की बाहरी रेखाओं पर फूल सजाए जाते हैं, जबकि उड़ीसा, राजस्थान और उत्तर भारत के अन्य भागों में चित्र चावल के आटे और पानी के मिश्रण से बनाया जाता है और यह मिश्रण उँगली, कपड़े के टुकड़े या किसी ब्रुश से लगाया जाता है। उत्तर भारत में यह चित्रांकन अधिकतर धार्मिक उत्सवों या व्रतों के दौरान ही किए जाते हैं जबकि दक्षिण भारत में 'कोलम' रोजाना तैयार किया जाता है।

अल्पना/अल्पाना/अरिपन/रंगोली/झुनिति

अल्पना बंगाल में घर की स्त्रियों द्वारा तीज-त्यौहारों और धार्मिक उत्सवों-पर्वों के दिनों में अपने घरों के सामने बनाई जाती है। इसका चित्रांकन उँगली के चारों ओर कपड़े का छोटा टुकड़ा लपेटकर और उस उँगली को पिसे हुए चावलों के पानी मिले घोल में डुबोकर किया जाता है।

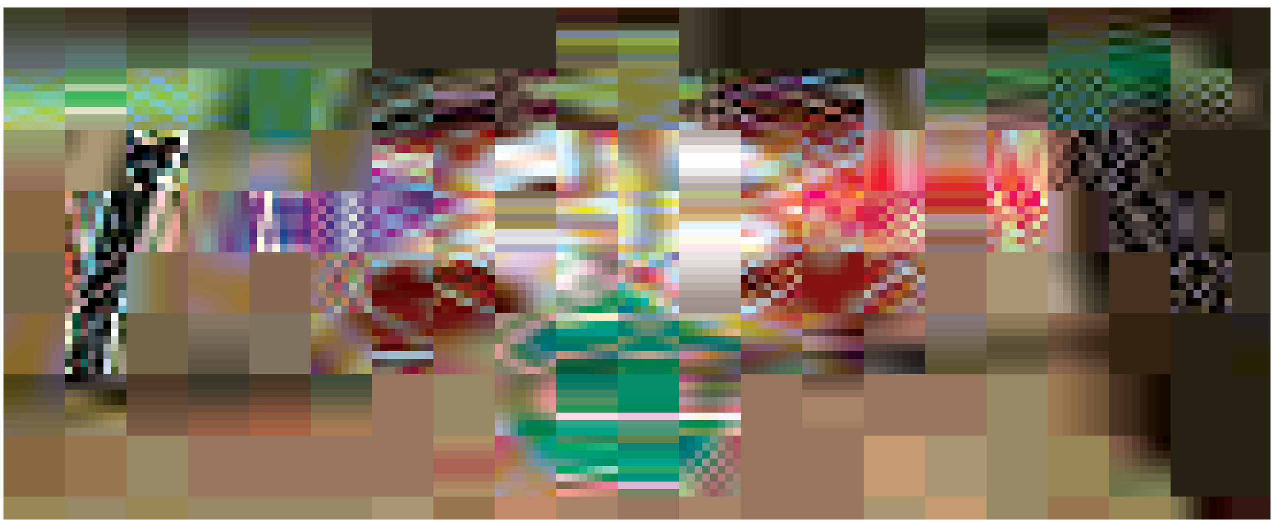

चित्र 5.7 चित्रांकन के भिन्न-भिन्न रूप

ये चित्रांकन भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं और तरह-तरह की धार्मिक क्रियाओं या व्रतों से जुड़े होते हैं, जैसे केवल विवाहिताओं द्वारा किए जाने वाले 'नारी-व्रत' और कुँवारी कन्याओं द्वारा किए जाने वाले 'कुमारी व्रत', अथवा स्त्रियों की ओर से पुरोहितों द्वारा किए जाने वाले 'शास्त्रीय व्रत'। व्रत ऐसे धार्मिक कृत्य या अनुष्ठान होते हैं जो कुछ विशेष इच्छाओं या मनौतियों को पूरा करने के लिएप ीढ़ी-दर-पीढ़ीच लेअ ार हेंि नयमोंव ेअ नुसारस ंपन्नि कएज ातेह ैं;य े नियम किसी विशेष पंथ या संप्रदाय तक ही सीमित नहीं होते। जैसा कि स्पष्ट है, ये चित्रांकन साधारण या अल्पविकसित कुशलता वाले लोगों द्वारा किए जाते हैं। वे मामूली शक्ल-सूरत की साधारण तसवीरें बनाते हैं। इनका प्रयोग अल्पना के माध्यम से लोगों द्वारा अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न रूपों और गाथाओं में किया जाता है।

अल्पनाव ेव ुछरू पोंम ेंअ लंकरणक ाभ ाावभ ाीि यक्तह ोताह ैज ोि क विभिन्न किस्म के बेलबूटों और कमलपुष्पों के रूप में चित्रित किया जाता है। लेकिन जब अल्पना के इन नमूनों को व्रत या मनौती आदि के धार्मिक अनुष्ठानों के संदर्भ से अलग करके देखा जाता है तब वे केवल सजावट की वस्तुएँ ही रह जाती हैं।

बिहार के मिथिला क्षेत्र में 'अरिपन' ब्राह्मण और कायस्थ स्त्रियों द्वारा तैयार की जाती है जो धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ी होती है। वे घर और आँगन के मिट्टी से लिपे-पुते फर्श पर अपनी उँगलियों से सुंदर किनारी बनाती हैं। उसमें गहरे लाल सिंदूर से सुंदर बिंदियों से नमूने बनाए जाते हैं। उसमें हल्दी, चावल या गेहूँक ा आटा जैसी सामग्री का प्रयोग किया जाता है जिसे 'अरिपन' कहा जाता है।

चित्र 5.8 कलामेजुतु

स्त्रियों द्वारा घर की देहली पर किए जाने वाले अल्पना आदि चित्रांकनों को यहीं छोड़कर अब केरल के मंदिरों में बालू से की जाने वाली चित्रकारी की चर्चा करते हैं। इस चित्रकारी के लिए अधिक कार्य-कुशलता की आवश्यकता होती है जो कलाकार को परंपरागत रूप से निर्धारित नियमों के माध्यम से प्राप्त होती है।

'कलामेजुतु' एक अस्थायी किस्म का चित्रांकन होता है जो मंदिर के सामान्य उत्सवों या किसी बड़े धार्मिक अनुष्ठान के समय किया जाता है और उस अनुष्ठान के संपन्न होने के बाद उसे तुरंत मिटा दिया जाता है। यह रंगीन चित्रांकन हाथों से ही किया जाता है, यानी इसे बनाने में किसी उपकरण या औज़ार की आवश्यकता नहीं होती है। इसमें प्राकृतिक खनिजों, वनस्पतियों या दोनों से निकाले गए रंगद्रव्यों का प्रयोग होता है।

कोलम

'कोलम' मुख्य रूप से इस विश्वास के साथ बनाया जाता है कि इससे घर-परिवार में सुख-संपत्ति आएगी। कोलम का एक आकर्षक पहलू यह भी है कि कोलम मोटे चावल जैसी जिन चीज़ों से बनाया जाता है उन्हें खाने-चुगने के लिए छोटे जीव-जंतु या पक्षी चले आते हैं और ऐसा समझा जाता है कि उनके साथ घर में

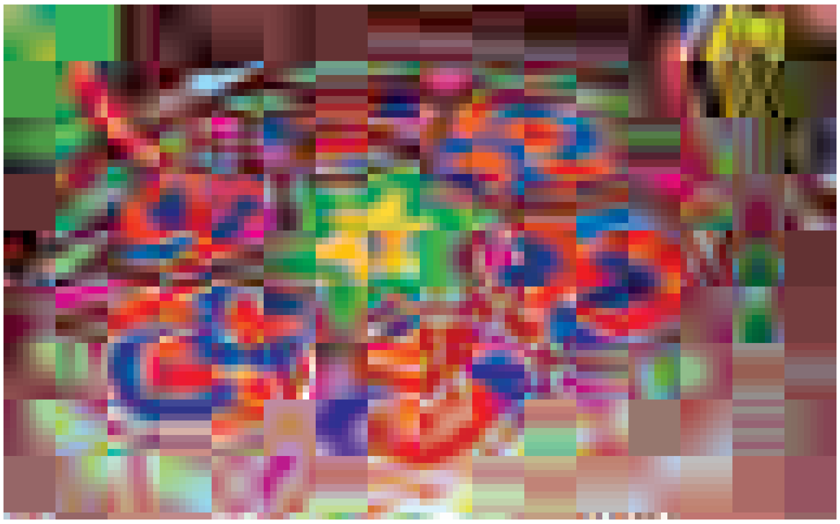

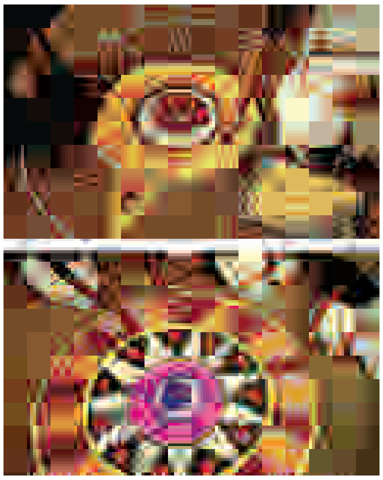

चित्र 5.9 कोलम

सुख-समृद्धि भी चली आती है। दूसरे, यह दैनिक जीवन में समरसतापूर्ण सह-अस्तित्व का पाठ पढ़ाता है। आज जबकि दुनिया में चारों ओर मानवीय मूल्यों की अवहेलना की जा रही है और संपूर्ण पर्यावरण का ह्रास हो रहा है, इसका महत्व और बढ़ गया है।

दूसरी ओर, यह भी समझा जाता है कि इन डिज़ाइनों से देहली पवित्र हो जाती है और घर पवित्र होकर बाहर की अशुभ, अशुद्ध और खतरों भरी दुनिया से सुरक्षित रहता है। ऐसा माना जाता है कि कोलम की बंद रेखाएँ प्रतीकात्मक रूप से दुष्टात्माओं को अन्दर प्रवेश करने से रोक देती हैं। यदि देहली को लगातार कोलम बनाकर पवित्र न रखा जाए तो अशुभ शक्तियाँ घर के भीतर घुस आएँगी और फिर परिवार के स्वास्थ्य और सुखों को नष्ट कर देंगी। इसीलिए देहली पर से ही उन अशुभ शक्तियों को भगा देने के लिए कोलम बनाया जाता है।

कोलम की रचना का मूल आधार बिंदियाँ (पुल्ली) होती हैं जिन्हें आपस में जोड़कर तरह-तरह के डिज़ाइन और नमूने बनाए जाते हैं।

किसी भी संस्कृति में भिन्न-भिन्न स्तरों के कलाकार होते हैं। कुछ में मामूली किस्म की कार्य-कुशलता होती है जिसके आधार पर वे आस-पास दिखाई देने वाले तथ्यों या घटनाओं को चित्रित करने की कोशिश करते हैं, जबकि कुछ उच्चकोटि के कलाकार होते हैं और स्वयं वस्त्रों आदि पर अपने मौलिक और अधिक जटिल तथा सुंदर डिज़ाइन तैयार करते हैं।

भारत-भर में सर्वत्र विभिन्न प्रकार से फर्श-सज्जा की जाती है और किसी क्षेत्र विशेष से संबंधित फर्श पर की जाने वाली सजावट की विशेषताओं तथा भावों के विषय में शोधकार्य करना रोचक होगा।

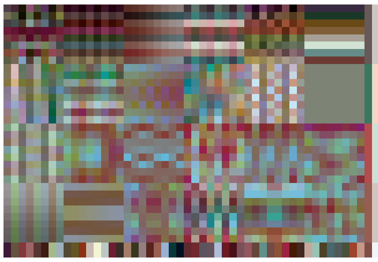

चित्र 5.10 रामायण की घटनाओं के साथ एक कलमकारी

कलमकारी

कलमकारी सूती वस्त्र पर हाथ से बनाई गई या ठप्पे से छापी गई चित्रकारी की

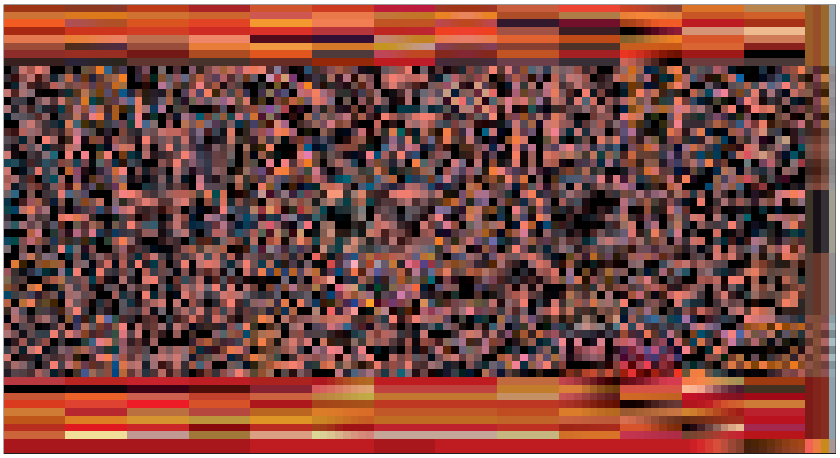

चित्र 5.11 इकत कपड़ा

भीतर घुसने से रोकता है। क्योंकि दोनों (मोम और रंग) एक दूसरे को रोकते हैं। कई रंगों के लिए इस प्रक्रिया को कई बार दोहराया जाता है। कभी–कभी कपड़े की हर पट्टी (हिस्से) को अगली पट्टी से अलग रखते हुए अलग–अलग रंगों में रँगना होता है। जब धागे तैयार हो जाते हैं तब उन्हें करघे में लगाया जाता है। इकत कपड़ों को सँकरे करघों पर हाथ से बुना जाता है। इस प्रक्रिया में बहुत मेहनत करनी पड़ती है। जब रँगे हुए धागों को ताने के तौर पर काम मे लिया जाता है तब बुनकर को कपड़े का नमूना दिखाई दे सकता है। धागों को आगे-पीछे सुव्यवस्थित किया जाता है जिससे कि उनका एक दूसरे के साथ सही–सही मेल बैठ सके।

दोहरे इकत बनाना बहुत कठिन होता है। इसके लिए ताना और बाना दोनों को बड़ी सावधानी से टाइ–डाई किया जाता है ताकि जब कपड़ा बुन रहा हो तो वांछित नमूना सही–सही उभर सके। इसमें सबसे बड़ी चतुराई यह है कि ताने और बाने के धागों को सही ढंग से रँगा जाए ताकि वांछित डिज़ाइन बन सके और फिर उन्हें कपड़े के रूप में एक साथ ठीक से बुना जाए। कपड़ा सूती, रेशमी या दोनों का मिला–जुला रूप हो सकता है। अब रंगों और उनके मिश्रित रूपों को अधिकाधिक रूप में प्राकृतिक स्रोतों से लिया जा रहा है। अब पुरानी और नई पीढ़ी के बुनकर, समाज की बदलती हुई रुचियों को ध्यान में रखते हुए, परंपरागत डिज़ाइनों को छोड़कर नई–नई डिज़ाइनें अपनाने लगे हैं।

जनजातीय डिज़ाइन पद्धतियाँ

जनजातीय समाज अपने धार्मिक अनुष्ठानों को चित्रमय लेखन के साथ संपन्न करता रहा है जिन्हें भारत के विभिन्न भागों में दीवारों की सजावट के रूप में भी काम में लिया जाता था जैसा सावरा, मधुबनी, वरली आदि। ये सभी चित्रलेख उनके लोक और कर्मकांडीय कृत्यों, पौराणिक कथाओं, इतिहास और रोज़मर्रा की ज़िंदगी की झलक भी पेश करते हैं जैसा कि वरली के भित्तिचित्रों में दिखाई देता है। आकृतियाँ और रेखाचित्र बनाना ही इन लोगों के लिए अपने पैतृक ज्ञान, लोक साहित्य और सद्भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाने का माध्यम था।

इन भित्तिचित्रों में चित्रात्मक वृत्तांतों को प्रस्तुत करने की आरम्भिक

शब्दावली यानी संकेतों का प्रयोग किया गया है। जैसे किसी भाषा के वर्ण उसके मूल तत्व होते हैं उसी प्रकार इन चित्रलेखों के मूल तत्व वर्ग, वृत्त, त्रिभुज, अर्धवृत्त जैसी आकृतियाँ हैं जिससे ये कलाकार भावों और विचारों को व्यक्त करते हैं। वृत्त और त्रिभुज की जानकारी उसे प्राकृतिक दृश्यों को देखने से मिली। वृत्त की जानकारी सूर्य और चंद्रमा से मिली और पहाड़ों तथा पेड़ों को देखकर उसने त्रिभुज बनाना सीखा। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ग का आविष्कार मनुष्य ने स्वयं अपनी बुद्धि से किया। वर्ग किसी धार्मिक अहाते या ज़मीन के टुकड़े का सूचक होता है।

चित्र 5.12 एक जनजातीय डिज़ाइन

सावरा या वरली चित्रलेखों में पाई जाने वाली आकृतियाँ दो त्रिभुजों के मिलने से बनती हैं। एक बिंदु पर मिले हुए दो त्रिभुजों में ऊपरी त्रिभुज मानव शरीर के ऊपरी भाग का द्योतक होता है। सिर का भाग एक छोटे वृत्त के रूप में दर्शाया जाता है और एक उससे भी छोटा वृत्त बड़े वृत्त के साथ मिलकर स्त्री की आकृति को दर्शाता है। जब किसी वृत्त के साथ दो टाँगें और दो हाथ दर्शाने के लिए चार रेखाएँ जोड़ दी जाती हैं तो वह मानव आकृति का सूचक होता है। इसी प्रकार अन्य कई संकेत वृत्तांतों की विभिन्न जटिलताओं के सूचक होते हैं। इन वृत्तांतों का एक ऐसा चित्रलेख प्रस्तुत किया जाता है जो इन दीवारी सजावटों या अलंकरणों का आवश्यक पहलू बनता है।

सावरा चित्रलेख : एक चित्र-विशेष का अध्ययन

उड़ीसा में सावरा (सौरा) वहाँ के जनजीवन का परंपरागत रूप है। सफेद रंग में चित्रिर्त विशद् चित्रलेखोंक ों इत्तल'य ा इदित्तल'भ ाीक हाज ाताह ै।य े ि चत्र उनके घरों की भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार की दीवारों पर बनाए जाते हैं। सावरा या इत्तल अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिए बनाया जाता है। अपने इष्टदेव जलीयसुम को उसकी प्रशंसा के द्वारा प्रसन्न करने के लिए चित्र में यह दर्शाने का प्रयत्न किया जाता है कि वह कितना अधिक शक्तिशाली व्यक्ति है, उसके पास कितने अधिक नौकर-चाकर हैं, वह कितने शानदार तरीके से शादी रचाता है, इत्यादि।

इन प्रतीकों की संदेश-सूचक क्षमता की प्रभावकारिता को गहराई से जानने के लिए, आइए एक सावरा चित्रलेख को बारीकी से देखें। सावरा चित्रलेख या इत्तल मृतकों की यादगार में, बीमारियों को दूर भगाने के लिए, उर्वरता में वृद्धि करने के लिए और कतिपय पर्वों के अवसरों पर तैयार किए जाते हैं। ऐसे चित्रलेख को चित्रित करने के लिए पहले घर की किसी दीवार को लाल चिकनी मिट्टी से पोता जाता है; फिर उस पर चावल के आटे और पानी के मेल से तैयार किए गए मिश्रण से चित्रकारी की जाती है। यह मिश्रण ऐसी टहनी से लगाया जाता है जिसका सिरा इस कार्य के लिए विशेष रूप से तैयार किया जाता है।

हाशिये में दिए गए चित्रलेख को ध्यान से देखिए। इसके मध्यभाग में एक आयताकार अहाता बना हुआ है जो राजमहल का सूचक है। इसमें नाचते हुए लोग दिखाए गए हैं। मानव आकृतियों को बुनियादी ग्राफिक तत्वों; जैसे–त्रिभुजों, वृत्तों और हाथ-पैरों के लिए मामूली रेखाओं के मेल से चित्रित किया गया है। इस अहाते से बाहर चित्रित एक पेड़ पर खुशी से नाचते हुए बंदर दिखाए गए हैं। जलीयसुम की माँ, बहनें और बेटियाँ एक कतार में नाचती हुई उस भवन की ओर

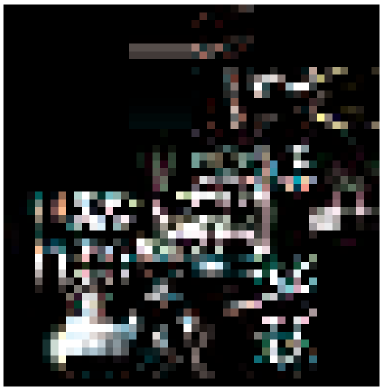

चित्र 5.13 एक सावरा चित्रलेख

आ रही हैं और अपने कधों पर बंदूकें लिए हुए सैनिक उनकी रक्षा कर रहे हैं। सूरज, चाँद और तारों को वृत्त, अर्धवृत्त और बिंदुओं के रूप में उस दृश्य पर चमकता हुआ दर्शाया गया है। एक अन्य देवता हाथी पर बैठकर विवाहोत्सव में शामिल होने के लिए आ रहे हैं। हाथी का चित्र बनाने के लिए पहले त्रिभुजों की सहायता से उसका शरीर बनाया गया है और फिर उसमें टाँगें, पूँछ और सूँड़ लगाई गई हैं और अंत में शरीर में सफेद रंग भरा गया है और सवार को हाथी पर बैठा दिया गया है। घोड़े का आकार भी मानव आकृति की तरह ही दो विपरीत त्रिभुजों के मेल से बनाया गया है और उसे एक ओर झुका हुआ दिखाया गया है। कुम्हार चावल की मदिरा पीने के लिए बर्तन ला रहा है। एक स्थानीय मुखिया घोड़ी पर चढ़कर आ रहा है और उसके पीछे घोड़ी का बच्चा आ रहा है। वह शादी में दावत के लिए दो बकरियाँ ला रहा है। दो आदमी देवता के नौकरों द्वारा मारे गए सांभर ला रहे हैं। वनाधिकारी भी अपने परिवार सहित समारोह में उपस्थित हुआ है और वे सब समानांतर रेखाओं से दर्शाई गई कुर्सियों पर विराजमान हैं। जलीयसुम के कुत्ते टाइगर ने एक अनचाहे मेहमान को पकड़ लिया है और एक दूसरे कुत्ते ने एक गिरगिट पर आक्रमण कर दिया है और एक आदमी अपने कमान से उस पर तीर चला रहा है।

लहरदार या टेढ़ी रेखाओं या बिंदियों जैसे सामान्य चिह्नों से चित्रांकन की ग्राफिक शोभा तो बढ़ती ही है, साथ ही वे बालों, पंखों, पत्तियों आदि के आनुष्ठानिक प्रतीक भी होते हैं। इस प्रकार इन निश्चित तत्वों के संयोजन के साथ और भी अनेक सूचक-संकेत होते हैं जिनसे चित्रात्मक गद्य-पद्य में सपनों तथा लोकथाओं को विस्तार से सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया जाता है। यह सब इन आकर्षक डिज़ाइनों की सादगी में दृष्टिगोचर होता है।

पिठोरा-भीलों की चित्रकारी : एक स्थिति अध्ययन

पिठोरा चित्रकारी गुजरात और मध्य प्रदेश के राठवा, भील और नायक जनजातियों के लिए, दीवारों पर बने रंगीन चित्रों के अलावा भी और बहुत कुछ हैं। वे परिवार या समुदाय में शादी-विवाह, बच्चे के जन्म जैसे समारोहों तथा तीज-त्योहारों के आगमन की सूचना देती हैं। इन आनंदोत्सवों की खुशी एवं खुशहाली पिठोरा चित्रकारियों में उनके रंगों और सजीव आकृतियों में दृष्टिगोचर होती है। घरों की दीवारों पर की जाने वाली इन चित्रकारियों के बारे में ऐसा सोचा जाता है कि इनसे घरवालों का भाग्य चमक जाएगा और उनके जीवन से गरीबी दूर भाग जाएगी।

इन चित्रकारियों में अधिकतर बाबा पिठोरा और पिठोरी देवी की शादी के जुलूस का चित्रण किया जाता है। पिठोरा बाबा और पिठोरी देवी जनजातीय लोगों द्वारा पूजे जाने वाले देवी-देवता हैं। हिंदू पौराणिक कथाओं में उल्लिखित अन्य देवी-देवताओं, जीव-जंतुओं और चरित्रों को भी इन चित्रकारियों में शामिल किया जाता है। इन चित्रों को बनाने की संपूर्ण प्रक्रिया परंपरा तथा संस्कृति द्वारा प्रेरित कला पद्धति को प्रतिबिंबित करते हुए उसकी याद को तरोताज़ा बना देती है। इसके अलावा, ये चित्र जनसाधारण के दैनिक जीवन को भी चित्रित करते हैं। इसलिए,

इन चित्रों में किसानों, स्त्रियों, पशुओं और जीव-जंतुओं तथा अन्य वस्तुओं को भी प्रस्तुत किया जाता है।

चित्रकारी की सामग्रियाँ रंजक द्रव्यों को दूध और महुआ के पेड़ से बनी शराब के साथ मिलाकर तैयार की जाती हैं। पिठोरा चित्रों में धार्मिक अनुष्ठान की पद्धति अधिक और कलात्मकता कम देखने को मिलती है। पिठोरा चित्रकारी के लिएघ् ारक ीप हलीद ीवारक ीस हीस् थानम ानाज ाताहै।ि जनद ीवारोंप रय` चित्रकारियाँ की जानी होती हैं, उन्हें सर्वप्रथम गाय के गोबर और मिट्टी के गाढ़े मिश्रण से पोता जाता है। यह पुताई का कार्य परिवार की कुँवारी कन्याओं द्वारा किया जाता है। फिर इस पर खड़िया मिट्टी की परत चढ़ाई जाती है, इस कार्य को लीपना कहते हैं। लीपने के बाद, चित्रकारी का कार्य पुरुषों द्वारा किया जाता है। जबकि अल्पना, कोलम, वरली या मधुबनी चित्रकारी बनाने का काम स्त्रियों द्वारा ही किया जाता है।

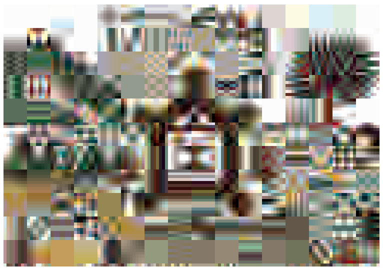

चित्र 5.14 भीलों द्वारा बनाया गया एक चित्र

हाशिये पर दिए गए पिठोरा चित्र का अवलोकन करें। यह एक आयताकार अहाते के भीतर चित्रित की जाती है जिसके बीच में नीचे की ओर एक दरवाज़ा-सा होता है। भीलों के जनजातीय जीवन से संबंधित किसी भी चीज़ को इस आयताकार चित्रकारी में शामिल किया जा सकता है; जैसे-बाघ, हाथी, बकरे, ऊँट, बरगद के पेड़, कीड़े-मकोड़े, बिच्छू, गिरगिट, मधुमक्खी के छत्ते, देवी-देवता और पौराणिक चरित्र, खेत जोतता हुआ किसान, मक्खन बनाती हुई स्त्रियाँ और शिकार करते हुए शिकारी, आदि। इन सब में प्रमुख हैं बाबा पिठोरा और देवी-देवताओं के घोड़ों के चित्र जो बड़े आकार के होते हैं और बीचोंबीच चित्रित किए जाते हैं। बाबा पिठोरा तथा देवी-देवताओं को या तो घोड़े पर चढ़े हुए दिखाया जाता है अथवा घोड़ों के रूप में ही चित्रित किया जाता है। घोड़ा बल-वीर्य और उर्वरता का द्योतक होता है, जिसे भील जाति सबसे अधिक महत्व देती है।

तांत्रिक डिज़ाइन पद्धतियाँ

तंत्र भारत में प्रचलित धार्मिक पद्धतियों की एक महत्वपूर्ण परंपरा है। हालांकि तंत्र क्या है और उसका मूलस्रोत क्या है, इस विषय में विद्वानों की राय एक जैसी नहीं है। तंत्र का सबसे स्पष्ट और प्रचलित पहलू यह है कि यह ग्राफिक आकृतियों के एक अन्य प्रकार 'यंत्र' से जुड़ा है।

यंत्र तंत्र-परंपरा के तीन आवश्यक तत्व में से एक है। ये तत्व हैं : मंत्र अर्थात ऐसे शब्द जिन्हें जादू-टोना माना जाता है, यंत्र यानी ग्राफिक आकृति और तंत्रय ानीव ास्तविकि क्रया;जैसे-ध्यान,भ ेंट,च ढ़ावाअ ादि।त ांत्रिक(तंत्रक ी क्रिया करने वाला व्यक्ति) अपना पूरा ध्यान यंत्र पर केंद्रित कर देता है और उसी का चिंतन-मनन करता है। ऐसा समझा जाता है कि ऐसा करने से उसे अलौकिक शक्तियाँ और अनुभव प्राप्त हो जाएँगे। चूँकि तंत्र का अभ्यास अक्सर पढ़े-लिखे लोगों द्वारा किया जाता है इसलिए ऐसा साहित्य बड़ी मात्रा में उपलब्ध है जिसमें

यंत्रक ीअ ाकृतियोंव ेप्र त्येकत त्वक ास ैद्धांतिकअ र्थस मझायाग याह ै।इ स साहित्यम ेंब तायाग याह ैि कत ंत्रस ंबंधीत त्वमीमांसाइ नर ेखाचित्रोंम ेंि कस प्रकार प्रतिपादित की गई है। लेकिन इस परंपरा का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इनके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि ये यंत्र अपना वांछित प्रभाव अवश्य दिखलाते हैं, भले ही इन पर ध्यान लगाने वाला व्यक्ति उनके अर्थ को जानता हो या नहीं।

चित्र 5.15 तंत्र डिज़ाइन

मंडल

हिंदू और बौद्ध तंत्रवाद में धार्मिक कृत्यों को संपन्न करने के लिए एक प्रतीकात्मक डिज़ाइन का इस्तेमाल किया जाता है। ऐसी डिज़ाइन का प्रयोग ध्यान और चिंतन के साधन के रूप में भी किया जाता है। इस प्रयोजन के लिए एक डिज़ाइन तैयार किया जाता है जिसे मंडल कहते हैं।

मंडल की संकल्पना वैदिक युग में भी प्रचलित थी। ऋग्वेद के सभी सूक्तों को दस वर्गों में विभाजित किया गया है जिन्हें मंडल कहते हैं। मंडल चक्रीय गुण-धर्म का सूचक होता है। वैदिक काल में वेदों के सूक्तों को चक्रीय रीति से उच्चारित करने की परंपरा थी। उदाहरण के लिए, ऋग्वेद के दसवें मंडल में एक सौ इक्यानवे सूक्त हैं। अत: इनका उच्चारण करने के लिए 191 वैदिक ऋषि (पुरोहित) मंडल बनाकर (गोलाकार घेरे में) बैठते थे। सर्वप्रथम पहला पुरोहित इस मंडल के पहले सूक्त का उच्चारण करता था। फिर 96वाँ पुरोहित दूसरा सूक्त बोलता था। इसके बाद दूसरा पुरोहित तीसरे सूक्त का उच्चारण करता था और चौथा सूक्त 97वाँ पुरोहित उच्चारित करता था। इस प्रकार बारी-बारी से मंडल के सभी सूक्तों का एक-एक कर सभी 191 पुरोहितों द्वारा उच्च स्वर में बोला जाता था। इस व्याख्या में दो रोचक ग्राफिक नमूने देखने को मिलते हैं। पहला, सम्भवत: एक मंडल यानी गोलाकार घेरा बनाकर बैठना प्रतीकात्मक रूप से संचार के घटनाक्रम के चक्रीय स्वरूप का द्योतक होता है। और दूसरा, मंत्रोच्चार का स्वरूप व्यासीय रूप से विपरीत अनुक्रम को दर्शाता है जिससे यह प्रकट होता है कि मंडल व्यासीय रूप से विपरीत बिंदुओं को जोड़ने से बनता है। इस सम्पूर्ण कर्मकांड का प्रतीकात्मक अर्थ क्या है? आज किसी को सही रूप में ज्ञात नहीं है किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि इस चक्रीय मंत्रोच्चार की परंपरा के कारण वैदिक सूक्तों के वर्गीकरण की प्रणाली को 'मंडल' नाम दिया गया था।

मंडल में बुनियादी तौर पर सम्पूर्ण विश्व का निरूपण होता है, यह एक ऐसा अभिषिक्त या पवित्र किया गया क्षेत्र है जो देवी-देवताओं को स्थापित करने के लिए निर्धारित होता है और विश्व की सभी शक्तियों को एकत्रित करने का स्थल होता है। मनुष्य (सूक्ष्म ब्रह्मांड) मानसिक रूप से मंडल में प्रवेश करके उसके केंद्र की ओर बढ़ते हुए, विघटन और पुनर्घटन की ब्रह्मांडीय प्रक्रियाओं के जरिये सादृश्य के आधार पर मार्गदर्शन प्राप्त करता है।

मंडल प्रतीकों से परिपूर्ण होते हैं। उनकी यह प्रतीकात्मकता बौद्धधर्म की

चित्र 5.16 एक मंडल

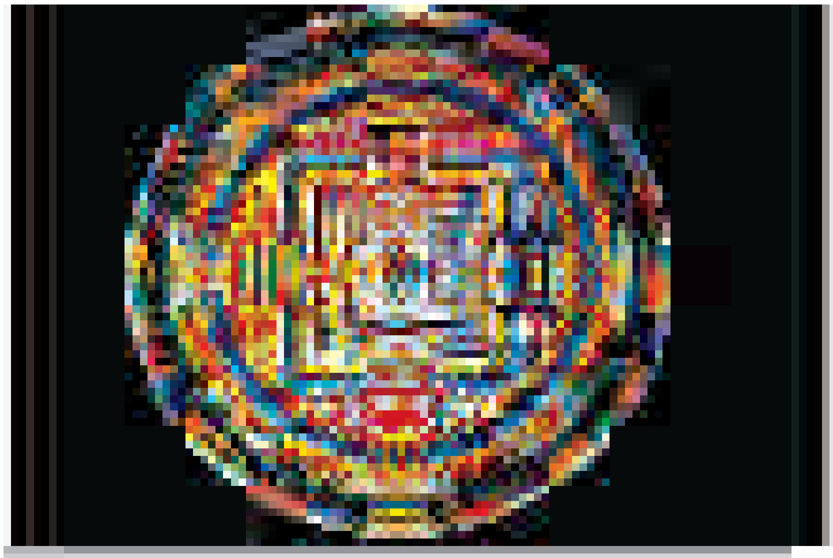

शिक्षाओं और परंपराओं के विभिन्न पहलुओं की द्योतक होती है। इसीलिए मंडल के निर्माण को एक पवित्र और धार्मिक कार्य माना जाता है जिसके द्वारा बुद्ध के उपदेशों तथा शिक्षाओं का प्रचार किया जाता है। तांत्रिक (तिब्बती) बौद्धधर्म में मंडल को धार्मिक कला के कार्य माना जाता है। मंडल शब्द संस्कृत भाषा से आया है जिसका सामान्य अर्थ है वृत्त यानी गोल घेरा। और मंडल प्राथमिक रूप से उनके संकेंद्री वृत्तों और अन्य ज्यामितीय आकृतियों से अलग पहचाने जाते हैं। मंडल अपनी ज्यामितीय आकृतियों के अलावा और भी बहुत कुछ महत्व रखते हैं। वे प्रतीकात्मकता की दृष्टि से बहुत समृद्ध और अर्थ की दृष्टि से बहुत पवित्र होते हैं। मंडल को आमतौर पर रँगी हुई बालू को सावधानी से स्थापित करके तैयार किया जाता है और इसीलिए तिब्बती भाषा में इसे 'दुल–त्सोन–क्यिल–खोर' यानी रंगीन चूर्णों (पाउडरों) का मंडल कहा जाता है। आगे चलकर मंडल की संकल्पना काप्र योगअ नेकध ार्मिकए वंस ांस्कृतिकि क्रयाओंम ें कियाज ानेल गा।च ीन, जापान और तिब्बत में काँसे और पत्थर के मंडल भी बनाए जाते हैं जो त्रिआयामी होते हैं।

मंडल का निर्माण

मंडल बनाने की प्रक्रिया एक धार्मिक कर्मकांड के रूप में होती है जिसमें चिंतन–मनन और ध्यान की कठोर क्रियाएँ शामिल होती हैं। इसे संपन्न करने में कई दिनों बल्कि सप्ताहों का समय भी लग सकता है। किसी मंडल के निर्माण कार्य में भाग लेने से पहले, बौद्ध भिक्षुकों को काफी लंबे समय तक कला और दर्शनशास्त्रीय अध्ययन करना होता है और यह अवधि तीन साल तक की भी हो सकती है। परंपरा के अनुसार, एक अकेले मंडल पर एक साथ चार भिक्षुक कार्य करते हैं। मंडल को चार बराबर के भागों में बाँटा जाता है और प्रत्येक भिक्षुक को एक सहायक सौंपा जाता है जो रंग भरने के काम में सहायता करता है और मुख्य

भिक्षुक विस्तृत रूपरेखा पर अपना काम जारी रखता है।

मंडल निर्माण का कार्य केंद्र से बाहर की ओर बढ़ते हुए किया जाता है। इसके लिए सर्वप्रथम वृत्त के बीचोंबीच एक बिंदु लगाया जाता है। केंद्रीय बिंदु लगाने के बाद, मंडल को किसी देव-विशेष को समर्पित किया जाता है। इस बिंदु पर आमतौर पर इस देवता की आकृति चित्रित की जाती है, हालांकि कुछ मंडल शुद्ध रूप से ज्यामितीय ही होते हैं।

फिर केंद्रबिंदु से चारों दिशाओं की ओर रेखाएँ खींच दी जाती हैं, जिससे त्रिभुजाकार ज्यामितीय आकृतियाँ बन जाती हैं। फिर उन रेखाओं की सहायता से एक वर्गाकार प्रासाद अथवा महल बनाया जाता है जिसके चार द्वार होते हैं। इस स्थिति तक आते-आते भिक्षुक आमतौर पर अपने-अपने चतुर्थांश तक ही सीमित रहते हैं। भीतरी वर्ग से, भिक्षुक बाहर आते हैं और संकेंद्री वृत्तों की श्रृंखला की ओर बढ़ते हैं और आगे-पीछे के क्रम से मंडल के चारों ओर घूमते हुए काम करते हैं। जब तक प्रत्येक अनुभाग का काम पूरा नहीं हो जाता वे इसी तरह बाहर की ओर बढ़ते हुए काम करते रहते हैं। इससे मंडल की रचना में निश्चित रूप से संतुलन बना रहता है।

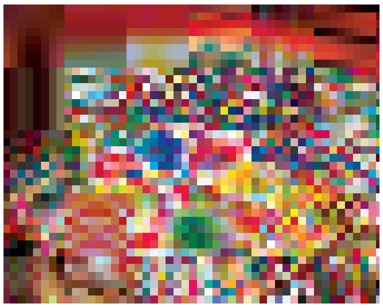

छत्र

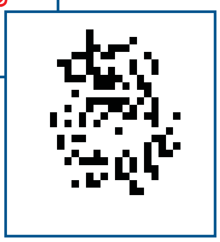

अंतहीन गाँठें

चित्र 5.17 बौद्ध धर्म में ग्राफिक प्रतीक

मंडल के बीच में स्थित वर्गाकार संरचना अधिष्ठाता देवताओं के लिए प्रासाद और बुद्ध के सारतत्व (essence) को रखने के लिए मंदिर का काम देती है। वर्गाकार मंदिर के चारों अलंकृत द्वार अनेक भावों एवं विचारों के प्रतीक होते हैं; जैसे–

- चार असीम भाव : दया, करुणा, सहानुभूति और धृति (धैर्य)।
- चार दिशाएँ : पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण।

देवताओं की आकृतियाँ वर्गाकार प्रासाद या मंदिर के भीतर बनाई जाती हैं, ये आमतौर पर पाँच ध्यानी बुद्धों (महाप्रज्ञ बुद्धों) की होती हैं। इन देवताओं की प्रतिमाएँ प्रतीकात्मकता से परिपूर्ण होती हैं। ध्यानी बुद्धों में से प्रत्येक बुद्ध एक दिशा (केंद्र, दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम), ब्रह्मांड तत्व (जैसे रूप और चेतना), पार्थिव तत्व (वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि और आकाश), और एक खास तरह की प्रज्ञा का प्रतीक होता है। प्रत्येक बुद्ध को एक खास बुराई; जैसे-अज्ञान, ईर्ष्या या घृणा आदि को वश में करने की शक्ति प्राप्त है। पाँचों ध्यानी बुद्ध आमतौरप रश ाक्ल-सूरतम ेंए कज ैसेह ातेह ैंल ेकिनअ ाकृतिक ािद ्ष्टिस ेव े किसी खास रंग, मुद्रा (हाथ का संकेत) और पशु के साथ निरूपित किए जाते हैं।

वर्गाकार मंदिर के बाहर अनेक संकेंद्री वृत्त बने होते हैं। सबसे बाहर का वृत्त आमतौर पर सुंदर कुंडलित कृति से सजाया जाता है जो आग के घेरे जैसा दिखाई देता है। यह अग्निचक्र मानव के उन विभिन्न जन्म-रूपों का प्रतीक होता है, जिनसे होकर वह भीतर के पवित्र क्षेत्र (निर्वाण) में पहुँचता है। यह अज्ञान के जलने-मिटने का द्योतक है। भीतर की ओर का अगला वृत्त वज्रपात का चक्र होता है जो अविनाशिता और प्रदीप्ति का सूचक है। इसके बाद का चक्र आठ समाधि क्षेत्रों का है जो मानवीय चेतना के उन आठ पहलुओं को दर्शाते हैं जो किसी व्यक्ति को जन्म-मरण के बंधन में बाँधे रखते हैं। अंतत: सबसे भीतर का चक्र कमल की पंखुड़ियों का बना होता है जो धार्मिक पुनर्जन्म का संकेत देता है।

सामान्य लक्षण

सामान्य रूप से संपूर्ण विश्व में और विशेष रूप से भारत में पाए जाने वाले स्वदेशी ग्राफिक डिज़ाइनों के सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं।

- ग्राफिक डिज़ाइन के बारे में जादुई/धार्मिक/अलौकिक विश्वास (ग्राफिक डिज़ाइनों को अलौकिक शक्तियों वाला माना जाता है)।
- परंपराक ाप ालनक रनेव ालों में अनुभवातीत/अलौकिक के प्रति अनुक्रिया।
- डिज़ाइन का धार्मिक क्रिया संबंधी उपयोग और उसका धार्मिक उद्गम।
- डिज़ाइन का धार्मिक क्रियाओं से संबंध
- रेखांकन के लिए प्राकृतिक या प्रकृति-अनुकूल उपकरणों तथा सामग्रियों का उपयोग और उसके परिणामस्वरूप उसके रूप (यानी रेखाओं, आकृति-रूपों तथा रंगों पर और उनके प्रयोग की तकनीक, शैली और संरचना) पर पर्यावरणिक पारिस्थितिक प्रभाव।

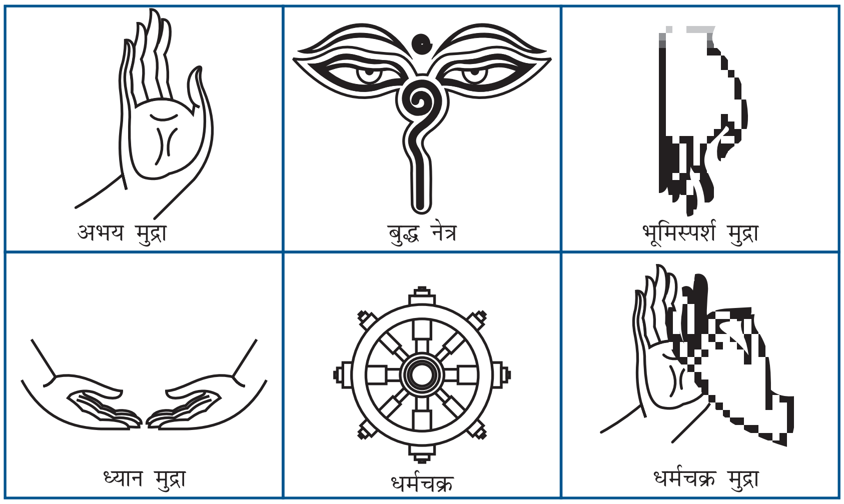

चित्र 5.18 ग्राफिक डिज़ाइनों में मूलभाव के रूप में प्रयुक्त बौद्ध प्रतीक।

मंडल के केंद्र में मुख्य देवता की आकृति होती है जो ऊपर वर्णित केंद्रीय बिंदु के ऊपर रखी जाती है। चूँकि केंद्रीय बिंदु का कोई आयाम नहीं होता इसलिए वह विश्व के बीज या केंद्र का द्योतक होता है।

यद्यपि कुछ मंडल रंग आदि से चित्रित होते हैं और ध्यान या चिंतन-मनन की वस्तु के रूप में लंबे समय तक उनका उपयोग होता रहता है, मगर परंपरागत तिब्बती धूलिनिर्मित मंडल जब पूरी तरह तैयार कर लिया जाता है तो उसे जानबूझ कर नष्ट कर दिया जाता है। उसकी धूलि को पास की किसी जलधारा या नदी में बहा दिया जाता है ताकि उसकी सकारात्मक शक्तियाँ सब में बँट जाएँ। जल में प्रवाहित करने की यह धार्मिक क्रिया इसके निर्माण तथा अन्य सभी लोगों को इस सत्य की याद दिलाती है कि विश्व में सभी चीज़ें नश्वर हैं और कोई भी चीज़ स्थायी नहीं होती-यह नश्वरता बुद्ध की शिक्षाओं का मूलमंत्र है।

इन जीवंत परंपराओं के अलावा कुछ लुप्त परंपराएँ भी हैं जो पुरातात्विक स्रोतों में और कुछ ऐसे प्रलेखों में पाई जा सकती हैं जो अब किसी समुदाय में प्रयोग में नहीं हैं। लेकिन ग्राफिक डिज़ाइनों का विशुद्ध सौंदर्यशास्त्रीय, कलात्मक, व सज्जात्मक पहलू आज भी इन स्वदेशी परंपराओं में पूर्ण रूप से अनुपस्थित नहीं है। वस्तुत: ग्राफिक डिज़ाइन की कुछ परंपराएँ, जो आरंभ में किसी धार्मिक क्रिया के संदर्भ में प्रयोग करने के लिए धार्मिक परंपराओं के रूप में शुरू हुई थीं, ये धीरे-धीर आगे चलकर कलात्मक और अलंकरणात्मक पद्धतियों के रूप में बदल गई हैं।

परियोजना

1. वस्तुएँ भिन्न-भिन्न संदर्भों में प्रयोग के अनुसार अपना अर्थ बदल लेती हैं, इस विषय पर एक परियोजना तैयार करें। समस्त परियोजना एक प्रलेखीय रूप में होनी चाहिए जिसमें रेखाचित्रों, तसवीरों या छात्रों द्वारा लिए गए फोटोग्राफों का प्रयोग किया गया हो। अपनी फाइलें प्रस्तुत करने के लिए दिलचस्प तरीकों का चयन करें।
2. आपके निकटवर्ती परिवेश में दीवारों को सजाने के लिए ऐसी ही किन-किन पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है और उनके उद्देश्य क्या हैं?

प्रश्नावली

1. कोलम और अल्पना में क्या अंतर है? रेखाचित्र बनाकर स्पष्ट करें।
2. किसी अल्पना के सांस्कृतिक पहलू के बारे में 10 पंक्तियाँ लिखें।
3. किस डिज़ाइन पद्धति का रूप स्त्रियोचित पहचान लिए हुए है? स्पष्ट करें।
4. सावरा के संदर्भ में जनजातीय कला के महत्व का वर्णन करें।
5. तंत्र भारत में धार्मिक पद्धति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण परंपराओं में से एक है। स्पष्ट करें।
6. मंडल बनाने की प्रक्रिया किस रूप में एक श्रमसाध्य कार्य है?

प्रायोगिक

1. अपने मोहल्ले या बस्ती में प्रचलित डिज़ाइन पद्धतियों का पता लगाएँ और उनका अध्ययन करें और उनकी विशेषताओं तथा विषमताओं एवं विविधताओं को लेखबद्ध करें।
2. अपने आसपास के परिवेश में मौजूद फर्श की सजावटों के विविध प्रकारों का पता लगाएँ और उनकी चित्रात्मक विशेषताओं तथा सूक्ष्म अंतरों का वर्णन करें।
3. 5×15 cm के आकार में एक पद्धति विशेष की रंगीन डिज़ाइन तैयार करें।
4. अपनी पसंद की कुछ उपयोगी वस्तुओं को चुनें और ऐसे पाँच तरीके बताएँ जिनमें उनका प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है।